International Journal of Enhanced Research in Educational Development (IJERED)
ISSN: 2320-8708, Vol. 13 Issue 6, November-December, 2025

सूर्यबाला के उपन्यास साहित्य में समाज के यथार्थ का चित्रण

Kunchikorave Dipa Prakash[1], Dr. Ram Manohar Upadhyay[2]

[1,2] Department of Hindi, Mansarovar Global University, Sehore (M.P.), India

शोध सारांश

सूर्यबाला के कथा-साहित्य में आधुनिक भारतीय समाज की ज्वलंत सामाजिक समस्याओं का यथार्थवादी चित्रण मिलता है। उनके उपन्यासों और कहानियों में गरीबी, बेरोजगारी, स्त्री उत्पीड़न (जिसमें बलात्कार और अनमेल विवाह शामिल हैं), पारिवारिक कलह और विघटन, महानगरीय जीवन की चुनौतियाँ और मलिन बस्तियों की अमानवीय स्थितियाँ प्रमुखता से उभरती हैं। 'अग्निपंखी' और 'सुबह के इंतजार तक' जैसी कृतियों में गरीबी और बेरोजगारी के भीषण दृश्य, वहीं 'मेरे संधिपत्र' में पितृसत्तात्मक सोच, अनमेल विवाह और कुंठाग्रस्त स्त्री की व्यथा को दर्शाया गया है। 'सुबह के इंतजार तक' बलात्कार की शिकार नारी के संघर्ष और समाज के क्रूर रवैये को उजागर करता है। 'अग्निपंखी' ग्रामीण पारिवारिक कलह और महानगरों में झोपड़पट्टी के नारकीय जीवन को चित्रित करता है, जबकि 'दीक्षांत' शिक्षा संस्थानों में व्याप्त भ्रष्टाचार और उसके पारिवारिक विघटनकारी प्रभावों पर प्रकाश डालता है। सूर्यबाला का साहित्य इन सामाजिक बुराइयों की गहरी जड़ों और उनके मानवीय परिणामों को संवेदनशीलता से प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक इन मुद्दों पर विचार करने के लिए प्रेरित होते हैं।

बीज शब्द (Keywords)- समाज ,सामाजिक समस्याएँ , हिंदी उपन्यास , सामाजिक यथार्थ, नारी चित्रण, आर्थिक स्तिथि ।

प्रस्तावना (Introduction)

सामाजिक समस्या से आशय उस विषम परिस्थिति से है, जिसमें समाज का एक महत्त्वपूर्ण अंश अथवा बृहत्तर समुदाय दुष्प्रभावित होता है, और जिसके अनिष्टकारी परिणाम दृष्टिगोचर होते हैं अथवा होने की संभावना बनी रहती है, जिनका एकमात्र निराकरण सामूहिक प्रयासों के समन्वय से ही संभव है। उदाहरणार्थ, भारत में व्याप्त बेरोज़गारी की समस्या एक ज्वलंत सामाजिक प्रश्न है, क्योंकि इससे समाज का एक बड़ा भाग, विशेषकर युवा वर्ग, त्रस्त है, और इसका निदान किसी अकेले युवक के प्रयत्न से संभव नहीं, अपितु युवकों, सरकार तथा अन्य स्वयंसेवी संस्थाओं के समेकित उद्यम से ही संभव है। निर्धनता, जनसंख्या का अनियंत्रित विस्तार, युद्ध, असंतोष, आतंकवाद आदि सामाजिक समस्याओं के कुछ ज्वलंत उदाहरण हैं।

काल के प्रवाह के साथ-साथ व्यक्ति और समाज दोनों में ही रूपांतरण एक सहज प्रक्रिया है। व्यक्ति और समाज दोनों ही परिवर्तन के शाश्वत चक्र में बंधे रहे हैं और बंधे रहेंगे। व्यक्ति और उसके द्वारा सृजित वस्तुओं एवं स्थापित मान्यताओं में अविराम परिवर्तन होता रहता है, जिसके परिणामस्वरूप व्यक्ति के विचारों, मूल्यों, रहन-सहन, जीवन-शैली, आदतों, फैशन, खान-पान इत्यादि में भी बदलाव आता रहता है। परिवर्तन प्रकृति का अटल नियम है, और सामाजिक संरचना को जीवंत बनाए रखने के लिए सामाजिक परिवर्तन भी अपरिहार्य है। अनेक सामाजिक परिदृश्यों के कारण व्यक्ति में और व्यक्ति के कारण सामाजिक अवस्थाओं में परिवर्तन घटित होते रहते हैं। यदि आज से लगभग अर्ध शताब्दी पूर्व भारतीय समाज के लोगों का अवलोकन किया जाए, तो यह स्पष्ट हो जाएगा कि पचास वर्ष पूर्व के व्यक्तियों की तुलना में वर्तमान व्यक्तियों के रहन-सहन, खान-पान, आदतों, फैशन आदि में अनेक महत्त्वपूर्ण बदलाव आए हैं। वर्तमान में समाज में अध्यापक की वह प्रतिष्ठा और सम्मान नहीं रहा, जो आज से पचास वर्ष पूर्व विद्यमान था। यद्यपि सामाजिक परिवर्तन समाजशास्त्र का मुख्य विषय रहा है, तथापि आधुनिक युग में इस महत्त्वपूर्ण समस्या के अध्ययन की ओर मनोवैज्ञानिकों का ध्यान विशेष रूप से आकृष्ट हुआ है। सामाजिक परिवर्तन प्रागैतिहासिक, ऐतिहासिक अथवा आधुनिक सभी प्रकार के समाजों की एक विशिष्टता रही है; इस परिवर्तन की गति कभी तीव्र होती है तो कभी मंद। समूह के आकार में अभिवृद्धि, अर्थव्यवस्था में परिवर्तन, सामाजिक संरचना में बदलाव, धार्मिक विश्वासों एवं क्रियाओं का नवीन महत्त्व, विज्ञान का विकास, युद्ध और आपदा कुछ ऐसे कारक हैं जो परिवर्तन से संबद्ध हैं।

डॉ. आर. एन. सिंहः आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

सामाजिक समस्या के अर्थ को स्पष्ट करने हेतु इसकी प्रमुख परिभाषाओं का ज्ञान होना आवश्यक है। राब एवं सेल्जनिक (Raab and Selznick) के अनुसार, "यह मानवीय सम्बन्धों की वह समस्या है जो स्वयं समाज को गम्भीर चुनौती देती है अथवा अनेक लोगों की महत्त्वपूर्ण आकांक्षाओं में बाधा पैदा करती है।" ग्रीन (Green) के अनुसार, "सामाजिक समस्या ऐसी परिस्थितियों का पुंज है जिसे समाज में बहुसंख्यक अथवा पर्याप्त अल्पसंख्यक द्वारा नैतिकतया गलत समझा जा सकता है।" इसी भाँति, होर्टन एवं लेस्ले (Horton and Leslie) के अनुसार, "सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो बहुत से लोगों को प्रतिकूल रूप से प्रभावित करती है तथा जिसका हल सामूहिक

सामाजिक क्रिया द्वारा ही हो सकता है।" फुल्लर एवं मेयर्स (Fuller and Myers) ने सामाजिक समस्या को परिभाषित करते हुए लिखा है कि, "जब समाज के अधिकांश सदस्य किसी विशिष्ट दशा एवं व्यवहार प्रतिमानों को अवांछित और आपत्तिजनक मान लेते हैं तब उसे सामाजिक समस्या कहा जाता है।"

मर्टन एवं निस्वेत (Merton and Nisbet) के अनुसार, "(सामाजिक समस्या) व्यवहार का वह ढंग है जोकि सामाजिक व्यवस्था के अधिकांश भाग द्वारा सामान्य रूप से स्वीकृत या अनुमोदित आदर्शों के उल्लंघन के रूप में माना जाता है।" इनके अनुसार सामाजिक समस्या का सीधा सम्बन्ध मानवीय सम्बन्धों और समाज की स्वीकृत व्यवस्था से होता है। ऐसे व्यवहार को हम समस्या इसलिए कहते हैं क्योंकि यह अपेक्षित योजनाओं में बाधा उत्पन्न करता है तथा समाज के नियमित जीवन में उथल-पुथल की ओर संकेत करता है।

मनुष्य स्वभाव से ही सामाजिक प्राणी है और समाज में रहने के कारण उसे कुछ अनकहे नियमों का पालन करना होता है। इस सामाजिक जीवन में उसे कई मुश्किलों का सामना करना पड़ता है। जब ये मुश्किलें पूरे समाज पर असर डालती हैं, तो वे व्यक्तिगत न रहकर सामूहिक समस्याएँ बन जाती हैं। इसी बात को डब्लू. वेलेसवीवर ने इस प्रकार कहा है कि, "सामाजिक समस्या एक ऐसी स्थिति है जो चिंता, तनाव, झगड़े या निराशा पैदा करती है और हमारी जरूरतों को पूरा करने में बाधा डालती है।"

आश्चर्य की बात यह है कि प्रगति और विकास भी अपने साथ नई समस्याएँ लेकर आते हैं, जैसे कि औद्योगीकरण, वैश्वीकरण, बाजारवाद और उदारीकरण। साहित्यकार समाज में होने वाली घटनाओं को गहराई से देखता है और अपनी कला के माध्यम से उन्हें चित्रित करता है। सूर्यबाला के साहित्य में दिखाई गई सामाजिक समस्याएँ वास्तविकता पर आधारित हैं।

डॉ. आर. एन. सिंहः आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।

सामाजिक समस्याएँ

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, जिसका अर्थ है कि वह स्वाभाविक रूप से समुदाय और समूहों में रहना पसंद करता है और इसी सामाजिक ढांचे के भीतर उसका जीवन व्यतीत होता है। इस सामाजिक व्यवस्था में प्रत्येक व्यक्ति का एक महत्वपूर्ण दायित्व होता है कि वह समाज द्वारा स्थापित किए गए बंधनों और नियमों का पालन करे। ये नियम एक प्रकार की अदृश्य डोर की तरह होते हैं जो समाज को एकजुट रखते हैं और सुव्यवस्था बनाए रखने में सहायक होते हैं।

हालांकि, इस सामाजिक जीवन में व्यक्ति को अनेक प्रकार की कठिनाइयों और चुनौतियों का सामना करना पड़ता है। ये व्यक्तिगत स्तर पर भी हो सकती हैं, लेकिन जब ये परेशानियाँ व्यापक रूप धारण कर लेती हैं और समाज के एक बड़े हिस्से को प्रभावित करने लगती हैं, तो इन्हें सामाजिक समस्याएँ कहा जाता है। सामाजिक समस्याएँ केवल कुछ व्यक्तियों तक सीमित नहीं रहतीं, बल्कि इनका प्रभाव पूरे समाज पर महसूस किया जाता है। ये गरीबी, बेरोजगारी, अपराध, भेदभाव, प्रदूषण जैसी अनेक रूप ले सकती हैं और सामाजिक ताने-बाने को कमजोर कर सकती हैं।

सूर्यबाला, एक प्रतिष्ठित साहित्यकार हैं, जिन्होंने अपने कथा-साहित्य में आधुनिक समाज में व्याप्त इन विभिन्न समस्याओं को अत्यंत कुशलता और गहराई से उजागर किया है। उनकी रचनाओं में समकालीन समाज की जटिलताएं, मानवीय संबंध, और उन समस्याओं का जीवंत चित्रण मिलता है जिनसे आज का मनुष्य जूझ रहा है। वे अपनी कहानियों के माध्यम से न केवल समस्याओं को दर्शाती हैं, बल्कि उनके संभावित कारणों और परिणामों पर भी प्रकाश डालती हैं, जिससे पाठकों को सामाजिक मुद्दों के प्रति एक नई दृष्टि मिलती है। इस प्रकार, साहित्य समाज का दर्पण होता है और सूर्यबाला का कार्य इस कथन को सार्थक करता है।

गरीबी की समस्या

हमारे समाज में व्याप्त अनेक समस्याओं में से, गरीबी की समस्या निस्संदेह सबसे अधिक गंभीर और व्यापक है। यह न केवल व्यक्ति के जीवन को नारकीय बनाती है, बल्कि पूरे समाज के विकास और प्रगति में भी एक बड़ा अवरोध उत्पन्न करती है। गरीबी का अर्थ है बुनियादी आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र और आवास का अभाव, जिससे व्यक्ति गरिमापूर्ण जीवन जीने से वंचित रह जाता है। यह एक ऐसी स्थिति है जो मनुष्य को शारीरिक और मानसिक रूप से कमजोर करती है और उसे निराशा एवं लाचारी के गर्त में धकेल देती है।

सूर्यबाला, एक संवेदनशील और जागरूक साहित्यकार होने के नाते, अपने कथा-साहित्य में गरीबी की इस भीषण समस्या के हृदयविदारक दृश्यों को अनेक स्थानों पर प्रस्तुत करती हैं। उनकी रचनाएँ समाज के उस हाशिए पर खड़े वर्ग की पीड़ा और संघर्ष को वाणी देती हैं, जो गरीबी के अभिशाप से त्रस्त है। उनके पात्र अपनी दैनिक जरूरतों को पूरा करने के लिए भी संघर्ष करते हुए दिखाई देते हैं, और उनकी कहानियाँ हमें यह सोचने पर मजबूर करती हैं कि इस समस्या का समाधान कैसे किया जाए।

इसका सबसे उत्कृष्ट उदाहरण उनकी प्रसिद्ध कृतियाँ 'अग्निपंखी' और 'सुबह के इंतजार तक' में चित्रित गरीबी का मार्मिक चित्रण है। इन रचनाओं में सूर्यबाला ने गरीबी के विभिन्न पहलुओं को उजागर किया है - जैसे कि भुखमरी, बच्चों की शिक्षा का अभाव, बीमारियों से जूझते लोग, और बेहतर भविष्य की धुंधली होती उम्मीदें। उन्होंने न केवल गरीबी की भयावहता को दर्शाया है, बल्कि उन मानवीय मूल्यों और संघर्ष की भावना को भी रेखांकित किया है जो ऐसे कठिन परिस्थितियों में भी लोगों को जीवित रहने की प्रेरणा देते हैं। इन कहानियों को पढ़कर पाठक गरीबी की वास्तविकता और उसके मानवीय परिणामों को गहराई से महसूस कर सकते हैं, जिससे समाज में इस समस्या के

प्रति जागरूकता और संवेदनशीलता बढ़ती है। सूर्यबाला का यह साहित्यिक योगदान गरीबी की समस्या के प्रति समाज को जगाने और उसे कम करने के प्रयासों को प्रेरित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।
सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पृ.13

सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81

प्रवासी मध्यवर्ग की सामाजिक विडंबना

प्रवासी मध्यवर्ग की सामाजिक विडंबना एक जटिल अनुभव है जिसमें आर्थिक उन्नति की आकांक्षा के साथ-साथ सांस्कृतिक अलगाव, पहचान का संकट, सामाजिक संबंधों में बदलाव और अतृप्त इच्छाएं शामिल हैं। यह वर्ग अक्सर एक ऐसे दोराहे पर खड़ा होता है जहाँ उसे अपनी जड़ों और नई पहचान के बीच संतुलन स्थापित करने के लिए निरंतर संघर्ष करना पड़ता है। इस विडंबना को समझना और इसके मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक प्रभावों का अध्ययन करना, प्रवासी समुदायों के अनुभवों को बेहतर ढंग से समझने के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण है।

सूर्यबाला के नवीनतम उपन्यास 'कौन देस को वासी : वेणु की डायरी' में प्रवासी भारतीय मध्यवर्ग की एक विशिष्ट सामाजिक समस्या का सूक्ष्म चित्रण किया गया है: **सुख की अतृप्त खोज और अपनी जड़ों से अलगाव की विडंबना**. यह उपन्यास, मात्र आर्थिक उन्नति की आकांक्षा में अपनी सांस्कृतिक, पारिवारिक और सामाजिक पहचान से दूर होते मध्यवर्ग के अंतर्द्वंद्व को साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत करता है।

उपन्यास का नायक, वेणु माधव शुक्ला, एक मेधावी युवक है जो बेहतर भविष्य और सुख-समृद्धि की तलाश में, भारतीय मध्यवर्ग की चिर-परिचित आकांक्षा को साकार करते हुए, अमेरिका की ओर प्रस्थान करता है। उसका पढ़ना-लिखना भी कहीं न कहीं इसी 'अर्थ-केंद्रित' मानसिकता से प्रेरित है। माता-पिता और बहनों की उम्मीदों के बोझ तले, वह अपनी जड़ों से दूर एक अनजाने परिदृश्य में सुख की तलाश में निकल पड़ता है।

सूर्यबाला, वेणु के आंतरिक जगत का मनोवैज्ञानिक गहराई से विश्लेषण करती हैं। परदेस में भौतिक सुख-सुविधाएं प्राप्त करने के बावजूद, वेणु एक गहरे आत्मिक खालीपन का शिकार होता जाता है। उसकी डायरी, उसके भीतर उठते 'मैं- कौन देस को वासी?' जैसे अस्तित्वगत प्रश्नों से भरी है। वह अपनी सांस्कृतिक विरासत और अतीत की स्मृतियों से बंधा हुआ है, जबकि अमेरिकी जीवनशैली उसे एक नए, व्यक्तिवादी ढांचे में ढालने का प्रयास करती है। यह द्वंद्व, उसे लगातार अपनी पहचान और मूल्यों पर प्रश्न उठाने के लिए विवश करता है।

लेखिका, वेणु के आत्म-संवादों के माध्यम से इस सामाजिक विडंबना को उजागर करती हैं। अमेरिका में 'स्टेटस सिंबल' बनने की चाहत, उसे क्षणिक आत्मविश्वास तो देती है, परन्तु कहीं न कहीं वह अपनी जड़ों से कटने की पीड़ा भी महसूस करता है। जब वह कुछ वर्षों बाद भारत लौटता है, तो पाता है कि भौतिक रूप से सब कुछ बदल गया है, परन्तु उसके भीतर की श्रद्धा और जुड़ाव कहीं खो गया है।

वेणु का विवाह एक ऊँचेपरिवार' की मेधा से होता है, जो अमेरिकी जीवनशैली के प्रति अधिक आकर्षित है। यह वैवाहिक जीवन, भारत और अमेरिका के मूल्यों के टकराव का प्रतीक बन जाता है। मेधा की भौतिकवादी आकांक्षाएं और भारतीय परंपराओं के प्रति उदासीनता, वेणु को और अधिक अकेला और कुंठित कर देती हैं। पश्चिम की व्यक्तिवादी संस्कृति में अकेले पड़ते मनुष्य की यह त्रासदी, उपन्यास में एक महत्वपूर्ण सामाजिक टिप्पणी के रूप में उभरती है।

अंततः, 'कौन देस को वासी : वेणु की डायरी' मात्र एक व्यक्ति की कहानी नहीं है, बल्कि उस प्रवासी मध्यवर्ग की सामाजिक विडंबना का चित्रण है जो सुख की मृगतृष्णा में अपनी सांस्कृतिक जड़ों से दूर होता चला जाता है और एक ऐसे 'अनजाने जंगल' में भटक जाता है जहाँ भौतिक समृद्धि तो मिलती है, परन्तु आत्मिक शांति और पहचान का संकट गहराता जाता है। सूर्यबाला की विशिष्ट शैली और मनोवैज्ञानिक अंतर्दृष्टि, इस महत्वपूर्ण सामाजिक मुद्दे को साहित्यिक रूप में प्रभावशाली ढंग से प्रस्तुत करती है।
सूर्यबाला, 'कौन देस को वासी : वेणु की डायरी'

'अग्निपंखी' कहानी का यह अंश एक गहरे पारिवारिक अंतर्द्वंद्व और मानवीय संवेदनाओं के क्षरण को साहित्यिक भाषा में प्रस्तुत करता है। जयशंकर की माँ, जो संभवतः अपनी जड़ों से जुड़ी हुई हैं और ग्रामीण परिवेश की स्मृतियों में रमी हैं, अपने पुत्र से गाँव वापस चलने का आग्रह करती हैं। वह अपने कुलदेवता और पूर्वजों की धरोहर का भावनात्मक हवाला देती हैं, जो उनके लिए अत्यंत महत्वपूर्ण हैं।

इसके विपरीत, जयशंकर नगरीय जीवन की कठोर वास्तविकता में पूरी तरह से रच-बस गया है और गाँव के नाम से भी विमुख होता दिखाई देता है। माँ की यह भावनात्मक पुकार उसे असह्य लगती है और वह आपा खो बैठता है। उसकी चीख में एक गहरी निराशा और खीझ झलकती है। वह माँ के आग्रह को पाखंड कहता है और कठोर शब्दों में उसे अपनी इच्छा थोपता है कि वह अब इसी शहरी परिवेश में जिएगी, मरेगी और मृत्यु के बाद उसकी मिट्टी भी गाँव नहीं जाएगी।

माँ का करुण रुदन जयशंकर के हृदय को नहीं पिघला पाता, बल्कि उसे और अधिक उद्विग्न कर देता है। वह अपनी ही माँ के लिए 'अच्छा जानवर' जैसे निंदनीय शब्दों का प्रयोग करता है, जो न मरती है और न ही उसे इस बंधन से मुक्ति दिलाती है। उसकी झुंझलाहट इतनी बढ़

जाती है कि यदि उसकी पत्नी उसे न रोकती, तो वह अपनी माँ का गला घोंट देने तक को उद्यत हो जाता। यह क्षण मानवीय संबंधों में आई विकृति और संवेदनहीनता की पराकाष्ठा को दर्शाता है।

उसी रात, माँ की वेदना और अपमान की गहरी चोट उसे भीतर तक झकझोर देती है। वह गुसलखाने में नल के नीचे बैठकर पूरी रात भीगती रहती है, मानो अपने दुखों को जलधारा के साथ बहा देना चाहती हो या फिर इस कठोर संसार से स्वयं को शीतल कर लेना चाहती हो। सुबह जब लोगों के बताने पर जयशंकर उसे देखता है, तो वह उसे लाकर खटिया पर डाल देता है।

इस घटना के बाद जयशंकर एक अज्ञात भय से घिर जाता है। यह भय स्पष्ट नहीं है कि वह मृत्यु की आशंका से व्याकुल है या फिर अपने द्वारा किए गए अमानवीय व्यवहार के कारण जीवन की जटिलताओं और उसके संभावित परिणामों से डर रहा है। यह अंश आधुनिक जीवनशैली में पारिवारिक मूल्यों के विघटन, पीढ़ीगत अंतराल और मानवीय संवेदनाओं के ह्रास को मार्मिक ढंग से चित्रित करता है।

सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81

'सुबह के इंतजार तक' नामक कृति गरीबी की उस दारुण गाथा को उकेरती है, जो एक परिवार को तिल-तिल कर मिटा देती है। मानु के पिता बेरोजगारी के अंधकार में डूबे हुए हैं, जबकि माँ अपनी कला - सिलाई, बुनाई और कढ़ाई - के सहारे परिवार के बुझते चूल्हे को जलाने का निष्फल प्रयास करती है। कभी कभार विद्यालय में अस्थायी कार्य मिल जाने से कुछ क्षणिक सहारा अवश्य मिलता है, परन्तु दो भाई और एक बहन के विशाल परिवार के समक्ष यह अल्प आय नगण्य ही सिद्ध होती है।

इस विकट परिस्थिति में, मानु के मामा अपनी बहन को कुछ संबल प्रदान करने के उद्देश्य से मानु को अपने घर ले जाते हैं। परन्तु नियति को कुछ और ही मंजूर था। मानु, अपने ही घर की आर्थिक विपन्नता के कारण मामा के आश्रय में जाने को विवश होती है, और वहीं पर वह बलात्कार जैसी जघन्य अपराध का शिकार बनती है। यह त्रासदी न केवल उसके शरीर को **क्षत** -विक्षत करती है, बल्कि उसकी आत्मा को भी गहरे तक घायल कर देती है। इसके पश्चात, वह अपने परिवार और समाज से एक कठिन संघर्ष करती हुई आगे बढ़ने का प्रयास करती है। गरीबी का क्रूर शिकंजा उसके परिवार को इस प्रकार जकड़ लेता है कि उसका छोटा भाई, उचित चिकित्सा के अभाव में, असमय ही मृत्यु की गोद में समा जाता है। और अंततः, मानु भी इसी गरीबी के अभिशाप के कारण काल के गर्त में समा जाती है।

'सुबह के इंतजार तक' गरीबी और उससे उत्पन्न हीनता की उस करुण कहानी को प्रस्तुत करता है, जो मानवीय अस्तित्व को नष्ट कर देती है। गरीबी के कारण मानु को अपने मामा के घर जाना पड़ता है, जहाँ उसकी मामी उपेक्षा का भाव रखती है और वह एक भयानक यौन उत्पीड़न का शिकार हो जाती है। मानु का दुखद अंत भी गरीबी की ही देन है।

उपन्यास में मानु स्वयं अपनी व्यथा कथा कहती है, "मैं किसी तरह हाईस्कूल पास कर दो साल से घर में बैठी थी। मुझसे छोटा बल्लू कभी एक डेढ़ साल पढ़ता, कभी फीस जमा कर पाने से नाम कट जाने पर घर बैठा रहता है।" यह कथन स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि गरीबी के कारण मानु की शिक्षा अधूरी रह जाती है। माता-पिता के पास विद्यालय शुल्क भरने के लिए पर्याप्त धन न होने के कारण मानु के भाई की पढ़ाई भी बाधित हो जाती है। यहाँ तक कि उनके सबसे छोटे भाई बिट्टू को साधारण मीठी गोलियाँ तक नसीब नहीं होतीं। इस प्रकार, 'सुबह के इंतजार तक' में गरीबी का एक अत्यंत भयावह और हृदयविदारक चित्र अंकित किया गया है, जो समाज के वंचित वर्ग की पीड़ा को उजागर करता है।

सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पृ.13

बेरोजगार युवकों की समस्या

बेरोजगार युवकों की समस्या आज हमारे समाज की एक ज्वलंत वास्तविकता है, जो न केवल प्रभावित युवाओं के व्यक्तिगत जीवन को अंधकारमय बनाती है, बल्कि राष्ट्र के सामाजिक और आर्थिक विकास के लिए भी एक गंभीर चुनौती प्रस्तुत करती है। शिक्षा और रोजगार के अवसरों के बीच व्याप्त गहरा असंतुलन, आर्थिक अस्थिरता के कारण रोजगार सृजन की धीमी गति, भर्ती प्रक्रियाओं में व्याप्त भ्रष्टाचार और भाई-भतीजावाद, युवाओं में आवश्यक कौशल का अभाव, और सूचना एवं मार्गदर्शन की कमी इस समस्या के कुछ प्रमुख कारण हैं। इसके परिणामस्वरूप, बेरोजगार युवा न केवल आर्थिक रूप से बोझ बनते हैं, बल्कि निराशा, तनाव और अवसाद जैसी गंभीर मानसिक स्वास्थ्य समस्याओं का भी शिकार होते हैं। बेरोजगारी सामाजिक अशांति को बढ़ावा दे सकती है और योग्य प्रतिभाओं के पलायन का कारण बन सकती है, जिससे देश अपने जनसांख्यिकीय लाभांश का पूर्ण लाभ उठाने से वंचित रह जाता है। इस गंभीर समस्या के समाधान के लिए शिक्षा प्रणाली में व्यापक सुधार, रोजगार सृजन को प्राथमिकता, भ्रष्टाचार पर प्रभावी नियंत्रण, कौशल विकास कार्यक्रमों का विस्तार और सूचना तंत्र को सुदृढ़ करना अत्यंत आवश्यक है। यह सामूहिक प्रयास ही हमारे युवा शक्ति को सही दिशा प्रदान कर सकता है और देश को प्रगति के पथ पर अग्रसर कर सकता है।

'अग्निपंखी' उपन्यास का जयशंकर एक ऐसा पात्र है जो शिक्षा के महत्व को समझता है और परिश्रमपूर्वक अध्ययन करता है। अपनी लगन और मेहनत के बल पर वह कुछ सरकारी नौकरियों की परीक्षाओं में सफलता भी प्राप्त करता है। परन्तु, भाग्य उससे रूठा रहता है और अथक प्रयासों के बावजूद उसे कहीं भी स्थायी रोजगार नहीं मिल पाता। वह रोजगार कार्यालय के चक्कर काट-काट कर थक जाता है, परन्तु वहाँ भी उसे निराशा ही हाथ लगती है। व्यवस्था में व्याप्त भ्रष्टाचार उसे और अधिक हताश करता है, क्योंकि वहाँ के बाबुओं को रिश्वत के तौर पर देने के लिए उसके पास 20 या 25 हजार रुपये जैसी बड़ी रकम नहीं होती।

एक अवसर उसे कंडक्टर की परीक्षा में सफलता के रूप में मिलता है, परन्तु यहाँ भी उसकी आर्थिक विवशता आड़े आ जाती है, क्योंकि इस पद को प्राप्त करने के लिए भी उसे रिश्वत देनी पड़ती है, जिसके लिए उसके पास धन का अभाव होता है। फिर भी, वह उम्मीद का दामन नहीं छोड़ता और एक अस्पताल में स्टोरकीपर की नौकरी पाने के लिए अपनी बूढ़ी विधवा माँ की अंतिम निशानी, उसकी करधनी तक बेच देता है। उस बिक्री से प्राप्त पाँच-सात हजार रुपयों से वह नौकरी पक्की समझ लेता है, परन्तु उसकी यह आशा भी क्षणभंगुर साबित होती है। किसी अन्य व्यक्ति द्वारा अधिक रिश्वत की पेशकश करने के कारण वह नौकरी भी उसके हाथों से निकल जाती है। लगातार मिल रही असफलताओं के कारण जयशंकर निराशा के अथाह सागर में डूब जाता है। घर के सदस्य भी उसकी बेरोजगारी से त्रस्त होकर उसे निकम्मा समझने लगते हैं। गाँव के लोग भी उसकी असफलता पर व्यंग्य और टीका-टिप्पणी करते हैं, जिससे उसकी मानसिक पीड़ा और बढ़ जाती है। इन विषम परिस्थितियों से विवश होकर, जयशंकर अपनी माँ के तीव्र विरोध के बावजूद, अपने ताऊ और चाचा को बिना बताए घर से निकल जाता है। वह महानगर मुंबई में एक छोटी सी झोपड़ी किराए पर लेकर अपना जीवन यापन करने लगता है।

शहर में रहकर, जयशंकर के मन में कहीं न कहीं गाँव में अपनी खोई हुई प्रतिष्ठा को पुनः स्थापित करने की इच्छा बलवती होती है। इसी आकांक्षा के वशीभूत होकर वह तमाम भौतिक वस्तुएँ खरीदता है और एक दिन अचानक गाँव लौटता है। वहाँ पहुँचकर वह पूरे गाँव के लोगों को उदारतापूर्वक उपहार बाँटता है, मानो अपनी सफलता का प्रदर्शन कर रहा हो।

जयशंकर अपनी माँ का इकलौता पुत्र था और एक विधवा बूढ़ी माँ का भरण-पोषण करना उसका नैतिक और सामाजिक दायित्व था। परन्तु, बेरोजगारी के अभिशाप ने उसे इस कदर बौखला दिया था कि वह अपने जीवन में निराश और असफल महसूस करने लगा था। यह अंश आधुनिक समाज में व्याप्त बेरोजगारी की गंभीर समस्या, भ्रष्टाचार के जाल और एक शिक्षित युवा की हताशा को मार्मिक ढंग से चित्रित करता है। यह दिखाता है कि कैसे सामाजिक और आर्थिक परिस्थितियाँ एक व्यक्ति को अपने मूलभूत कर्तव्यों से भी विमुख कर सकती हैं और उसके जीवन को अंधकारमय बना सकती हैं। सूर्यबाला के कथा-साहित्य में यह समस्या एक ज्वलंत सामाजिक मुद्दे के रूप में उभरती है।

सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81

नारी समस्या

'मेरे संधिपत्र' नामक रचना का यह अंश भारतीय समाज में गहराई तक बैठी पितृसत्तात्मक सोच और स्त्री-पुरुष के पारंपरिक भेद को साहित्यिक भाषा में उजागर करता है। शिवा, जो एक शिक्षित और समझदार नववधू है, अपनी सास से गृहस्थी के संचालन से संबंधित कुछ निर्देश प्राप्त कर रही है। इस क्रम में, सास उसे मर्द और औरत के बीच समाज द्वारा निर्मित अंतर को स्पष्ट करती है।
सास के शब्दों में, "औरत की दुनिया पति और बच्चे है। उसका स्वर्ग घर है। उसका ईश्वर पति है।" यह कथन भारतीय संस्कृति में पत्नी के स्थान और भूमिका को सीमित कर देता है। उसे पति और परिवार की परिधि में ही बांध दिया जाता है, और पति को उसका सर्वोपरि मानते हुए, उसे ईश्वर तुल्य स्थान दिया जाता है। सास आगे कहती है कि चाहे स्त्री कितनी भी शिक्षित और बुद्धिमान क्यों न हो जाए, वह कभी भी पुरुष की बराबरी नहीं कर सकती। उसकी नियति पुरुष के चरणों की धूल बनकर रहना ही है।

सास के अनुसार, यदि कोई स्त्री अपनी विद्या, बुद्धि या सौंदर्य के अभिमान में पुरुष के समकक्ष आने का प्रयास करती है, तो यह उसकी मूर्खता ही नहीं, बल्कि एक अपराध भी है। ऐसा प्रयास उसे समाज में कहीं का नहीं छोड़ता, उसे तिरस्कार और अलगाव का सामना करना पड़ता है। इसके विपरीत, पुरुष को तो स्वयं विधाता ने ही श्रेष्ठ बनाकर भेजा है, यह मान्यता सदियों से चली आ रही भारतीय परंपरा को दर्शाती है, जहाँ स्त्री को द्वितीयक और पुरुष को प्रथम स्थान प्राप्त है।

भारतीय संस्कृति में पति को परमेश्वर के समान पूजनीय माना जाता है, और पत्नी का धर्म पति की सेवा और आज्ञापालन ही माना जाता है। पुरुष की बराबरी करने का विचार स्त्री धर्म के विरुद्ध माना जाता है, और यदि कोई स्त्री ऐसा दुस्साहस करती है, तो उसे सामाजिक निंदा और दंड का भागीदार बनना पड़ता है।

आश्चर्य की बात यह है कि 'मेरे संधिपत्र' की नायिका शिवा पर परिवार का कोई प्रत्यक्ष दबाव नहीं है। परिवार के सभी सदस्य उसे अत्यंत स्नेह करते हैं, फिर भी उसकी सास उसे ये पारंपरिक बातें समझाती है। यह दर्शाता है कि पितृसत्तात्मक विचारधारा इतनी गहराई तक समाज में व्याप्त है कि यह स्नेह और प्रेम के माहौल में भी अपनी पैठ बनाए रखती है। सास का यह कथन किसी व्यक्तिगत द्वेष या दबाव का परिणाम नहीं है, बल्कि उस सदियों पुरानी सामाजिक व्यवस्था और सोच का प्रतिनिधित्व करता है जो स्त्री को पुरुष से कमतर आंकती है और उसे एक निश्चित दायरे में बांधकर रखना चाहती है। यह अंश भारतीय समाज में स्त्री की स्थिति और पितृसत्तात्मक मूल्यों की जटिलता पर एक गहरा प्रश्नचिह्न लगाता है।

बेटी का जन्म एक समस्या

'मेरे संधिपत्र' का यह अंश भारतीय समाज में व्याप्त लिंगभेद और पुत्र मोह की गहरी जड़ें दिखाता है। हमारे समाज में आज भी, दुर्भाग्यवश, बेटी के जन्म पर एक उदासी का माहौल छा जाता है, जबकि बेटे के जन्म पर चारों ओर खुशियाँ मनाई जाती हैं, मिठाइयाँ बांटी जाती हैं और उत्सव का आयोजन होता है। यह मानसिकता सदियों से चली आ रही है और आधुनिकता की तमाम प्रगति के बावजूद पूरी तरह से समाप्त नहीं हुई है।

'मेरे संधिपत्र' के रायजादा साहब इस सामाजिक सोच का एक ज्वलंत उदाहरण हैं। जब उन्हें तीसरी बेटी होती है, तो वे स्पष्ट रूप से नाराज और निराश होते हैं। इससे पहले भी उनकी पत्नी ने दो बेटियों को जन्म दिया था, जिससे उनकी पुत्र की कामना अधूरी ही रही थी। उनकी प्रतिक्रिया समाज में व्याप्त उस गहरे पूर्वाग्रह को दर्शाती है जहाँ पुत्र को परिवार की वंशवृद्धि, सामाजिक प्रतिष्ठा और आर्थिक सहारा माना जाता है, जबकि बेटी को अक्सर एक बोझ या पराया धन समझा जाता है।

कुंठाग्रस्त स्त्री की समस्या

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास का यह मार्मिक अंश एक स्त्री की गहरी आकांक्षाओं और उसके वास्तविक जीवन के बीच के विरोधाभास को साहित्यिक भाषा में व्यक्त करता है। नायिका, शिवा, एक सामान्य और समर्पित वैवाहिक जीवन की अभिलाषी थी। उसकी इच्छा थी कि उसका पति पौरुषत्व, आत्मविश्वास और ज्ञान से परिपूर्ण हो, जिससे वह न केवल शारीरिक स्तर पर, बल्कि मानसिक और बौद्धिक स्तर पर भी उसके साथ एकाकार हो सके। यह एक स्वाभाविक और सार्वभौमिक मानवीय इच्छा है, जो हर स्त्री अपने जीवनसाथी से रखती है - एक ऐसा संबंध जो सम्मान, समझ और समान धरातल पर आधारित हो।

यहाँ, शिवा की यह आकांक्षा किसी आदर्शवादी कल्पनालोक से नहीं उपजी है, बल्कि एक सामान्य स्त्री की सहज मानवीय चाहत है। वह एक ऐसे जीवन की कल्पना करती है जहाँ प्रेम, समर्पण और बौद्धिक संवाद का सामंजस्य हो। वह चाहती है कि उसका पति मात्र एक शारीरिक साथी न हो, बल्कि एक ऐसा व्यक्ति हो जिस पर वह विश्वास कर सके, जिसके ज्ञान से वह प्रेरित हो सके और जिसके साथ वह अपने विचारों और भावनाओं को खुलकर साझा कर सके।
परंतु, जब शिवा अपने विधवा होने से पूर्व के जीवन को याद करती है, तो उसे यह कटु सत्य अनुभव होता है कि उसकी यह सहज और स्वाभाविक इच्छा कभी पूरी नहीं हुई। उसके वैवाहिक जीवन में वह समर्पण, विश्वास और बौद्धिक सामंजस्य अनुपस्थित था जिसकी उसने कामना की थी। यह अहसास उसे गहरी निराशा और कुंठा से भर देता है। उसकी आंतरिक वेदना इस तथ्य से और अधिक बढ़ जाती है कि उसने एक ऐसे जीवन की अपेक्षा की थी जो हर स्त्री का अधिकार होना चाहिए, लेकिन उसे वह साधारण सुख भी नसीब नहीं हुआ।

यह अंश उन असंख्य स्त्रियों की आंतरिक पीड़ा को वाणी देता है जो एक ऐसे वैवाहिक बंधन में बंध जाती हैं जहाँ उनकी बौद्धिक और भावनात्मक जरूरतों को अनदेखा कर दिया जाता है। उनकी आकांक्षाएं अधूरी रह जाती हैं, और वे एक ऐसी कुंठा के साथ जीवन जीने को विवश हो जाती हैं जो धीरे-धीरे उनके मन और आत्मा को खोखला कर देती है। शिवा की यह याद न केवल उसकी व्यक्तिगत त्रासदी को उजागर करती है, बल्कि समाज में व्याप्त उस पितृसत्तात्मक मानसिकता पर भी प्रश्नचिह्न लगाती है जो अक्सर स्त्री की भावनात्मक और बौद्धिक आवश्यकताओं को गौण मानती है। यह एक आह्वान है कि हम ऐसे सामाजिक ढांचे पर पुनर्विचार करें जहाँ हर स्त्री को एक सम्मानजनक और पूर्ण जीवन जीने का अवसर मिल सके।

सूर्यबाला, मेरे संधिपत्र, पृ.91

बलात्कार की समस्या

पुरुष की अनियंत्रित कामुकता, समाज में नारी की असहाय स्थिति और खोखली प्रथा-परंपराओं के कारण नारी सदियों से बलात्कार जैसे जघन्य अपराध का शिकार होती आई है। बलात्कार के संदर्भ में, नारी सदैव एक पिसती हुई वस्तु रही है, अपनी अबलाता के कारण वह अक्सर अत्याचार की शिकार बनती है।

'सुबह के इंतजार तक' उपन्यास की नायिका मानु इस क्रूर वास्तविकता का एक त्रासद उदाहरण है। कम उम्र में ही वह बलात्कार की शिकार हो जाती है। उसके परिवार की आर्थिक तंगी उसे अपने मामा-मामी के शहर स्थित घर में आश्रय लेने के लिए विवश करती है। एक दुर्भाग्यपूर्ण दिन, जब मामा-मामी उसे घर पर अकेला छोड़कर सिनेमा देखने जाते हैं, तो मामा की मिल का एक व्यक्ति तेल का डिब्बा लेकर आता है। घर में किसी को न पाकर, वह नीचता की सारी सीमाएं लांघ जाता है और मानु पर अत्याचार करता है। विडंबना यह है कि वह पुरुष इस घिनौनी हरकत के बाद भी समाज में बेदाग घूमता रहता है।

इस बलात्कार का भयावह परिणाम यह होता है कि मानु कम उम्र में ही अविवाहित माँ बन जाती है। वह अपने माता-पिता के सामने अपराधी की तरह महसूस करती है, जबकि वास्तव में वह स्वयं पीड़ित है। उसके इज्जतदार माता-पिता इस सदमे से अंत तक उबर नहीं पाते। समाज की नज़रों से दूर, मानु अपने छोटे भाई बल्लू को साथ लेकर शहर चली जाती है। वहाँ उसे जीवन के हर मोड़ पर अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। वह एक मृत बच्चे को जन्म देती है, जो उसके अकेलेपन और संघर्ष को और गहरा करता है। जीवित रहने के लिए वह लोगों के घरों में बर्तन मांजने का काम करती है, धीरे-धीरे ट्यूशन लेती है और अंततः एक स्कूल में शिक्षिका की नौकरी पाने में सफल होती है। अपनी सारी कठिनाइयों के बावजूद, वह अपने भाई को पढ़ा-लिखाकर डॉक्टर बनाती है, जो उसकी जीवटता और संकल्प शक्ति का प्रमाण है। अंततः, वह कैंसर जैसी जानलेवा बीमारी का शिकार होकर इस संसार से विदा ले लेती है।

मानु बलात्कार की शिकार होने के बाद आत्महत्या का मार्ग नहीं चुनती, बल्कि चट्टान की तरह समाज का मुकाबला करती है और अपनी दृढ़ इच्छाशक्ति से अंततः एक प्रकार की जीत हासिल करती है। समाज और आस-पड़ोस के लोग धीरे-धीरे उसके संघर्ष और साहस को पहचानने लगते हैं और उसे सम्मान देते हैं। अपनी मृत्यु से पहले, मानु अपने भाई से कहती है, "मेरा जीवन अवधि में छोटा भले ही रहा हो, पर पूर्ण था। जीत की उपलब्धियों से पूर्ण... तेरी यह दीदी बहुत बहादुरी से यह जिंदगी जी चुकी है।" यह कथन मानु के अदम्य साहस, जीवन के प्रति उसके सकारात्मक दृष्टिकोण और विपरीत परिस्थितियों में भी हार न मानने वाले उसके जीवट का सार है। यह उपन्यास बलात्कार की शिकार एक नारी की पीड़ा, उसके संघर्ष और उसकी आंतरिक शक्ति की एक मार्मिक गाथा प्रस्तुत करता है।

सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पृ.13

अनमेल विवाह की समस्या

अनमेल विवाह, जिसका सामान्य अर्थ पति और पत्नी के बीच आयु का अत्यधिक अंतर माना जाता है, भारतीय समाज में एक गंभीर सामाजिक समस्या रही है। दहेज प्रथा और बाल विवाह जैसी कुप्रथाएँ अक्सर अनमेल विवाहों को जन्म देती हैं। जैसा कि उल्लेख किया गया है, बाल विवाह और दहेज प्रथा ही अनमेल विवाह की जननी हैं। अनमेल विवाह में, युवती को अक्सर अपनी इच्छाओं और आकांक्षाओं का दमन करके, अनिच्छापूर्वक अपने पति को स्वीकार करना पड़ता है। ऐसे विवाहों में युवती का शोषण होता है। भारतीय समाज में अनमेल विवाह एक भयानक सामाजिक दोष है, जहाँ नारी की परतंत्रता के कारण बहुधा उसी का शोषण होता आया है।

'मेरे संधिपत्र' उपन्यास भारतीय समाज में बरसों से चली आ रही अनमेल विवाह की इसी दुखद परंपरा को दर्शाता है। उपन्यास की नायिका शिवा और रायजादा साहब का विवाह भी एक अनमेल विवाह ही था। यह शिवा का पहला विवाह था, जबकि रायजादा साहब उससे उम्र में काफी बड़े थे और पहले से ही दो बेटियों के पिता थे। यह स्पष्ट रूप से दर्शाता है कि विवाह में आयु और पारिवारिक पृष्ठभूमि का कोई सामंजस्य नहीं था।

इस अनमेल विवाह का एक दुखद परिणाम तब सामने आता है जब रायजादा साहब पैंतीस वर्ष की उम्र में ही शिवा को अकेला छोड़कर परलोक सिधार जाते हैं। यह असामयिक मृत्यु न केवल शिवा के लिए एक गहरा आघात थी, बल्कि यह भी इंगित करती है कि आयु का बड़ा अंतर वैवाहिक जीवन की स्थिरता और दीर्घायु को किस प्रकार प्रभावित कर सकता है। यह घटना अनमेल विवाह के दुष्परिणामों का एक मार्मिक उदाहरण है, जहाँ एक युवती को न केवल अपनी इच्छाओं का दमन करना पड़ता है, बल्कि कम उम्र में ही वैधव्य का दुख भी झेलना पड़ता है। 'मेरे संधिपत्र' इस सामाजिक बुराई के मानवीय पहलुओं पर प्रकाश डालता है और अनमेल विवाह के शिकार स्त्रियों की पीड़ा को उजागर करता है।

सूर्यबाला, मेरे संधिपत्र, पृ.91

पारिवारिक कलह

'अग्निपंखी' उपन्यास हमारे ग्रामीण जीवन में व्याप्त पारिवारिक कलह और आपसी वैमनस्य के हृदयविदारक दृश्यों को प्रस्तुत करता है। इसमें एक माँ की दुर्दशा का चित्रण है, जो संयुक्त परिवार में अपने बेटे के लिए तड़पती और संघर्ष करती है। साथ ही, छोटे बेटे के मुंबई के मलिन बस्तियों में अमानवीय जीवनयापन के ऐसे दिल दहलाने वाले चित्र हैं जो पाठक के मन को करुणा से भर देते हैं।

उपन्यास में एक संयुक्त परिवार का चित्रण है, जहाँ मँझले भाई की विधवा, जयशंकर की माँ, अपने पति के निधन के बाद अपने बेटे को पढ़ा-लिखाकर बड़ा करती है। जयशंकर को शिक्षा दिलाने की जिम्मेदारी निभाने के कारण वह अपने जेठ और देवर की और भी एहसानमंद रहती है और उनकी हर संभव सेवा करती है। यह दर्शाती है कि विधवा होने के कारण उसे परिवार में एक अधीनस्थ स्थान प्राप्त है और वह अपने बेटे के भविष्य के लिए दूसरों पर निर्भर है।

जब वह अपने बेटे के घर से गाँव वापस आती है, तो उसके जेठ और देवर उसे भला-बुरा कहते हैं और उसे वापस अपने बेटे के पास भेज देते हैं। यह घटना संयुक्त परिवार में विधवा स्त्री की असुरक्षा और अपमानजनक स्थिति को उजागर करती है। उसे अपने ही परिवार में तिरस्कार और अलगाव का सामना करना पड़ता है। इसके अतिरिक्त, जमीन की हिस्सेदारी भी जयशंकर को नहीं मिलती, जो संयुक्त परिवार में संपत्ति के बँटवारे में अन्याय को दर्शाता है।

अंततः, पारिवारिक कलह और अन्याय के कारण संयुक्त परिवार विघटित हो जाता है, और जयशंकर बेहतर भविष्य की तलाश में मुंबई चला जाता है, जहाँ वह एक झोपड़पट्टी में रहकर अत्यंत कठिनाईपूर्ण जीवन यापन करता है। यह चित्रण ग्रामीण संयुक्त परिवारों के विघटन और शहरी मलिन बस्तियों में गरीब लोगों के संघर्षपूर्ण जीवन की वास्तविकता को सामने लाता है। 'अग्निपंखी' पारिवारिक कलह के विनाशकारी परिणामों और एक माँ एवं उसके बेटे की पीड़ा को मार्मिक ढंग से प्रस्तुत करता है, जिससे पाठक मानवीय संबंधों की जटिलता और सामाजिक अन्याय के प्रति संवेदनशील होते हैं।

सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81

पारिवारिक विघटन की समस्या (भ्रष्टाचार और आत्महत्या के संदर्भ में)

यद्यपि दिए गए अंश मुख्य रूप से 'दीक्षांत' उपन्यास में व्याप्त भ्रष्टाचार और आत्महत्या की समस्या पर केंद्रित है, इसमें पारिवारिक विघटन की समस्या अप्रत्यक्ष रूप से निहित है। शर्मा सर जैसे आदर्शवादी और योग्य शिक्षक को आत्महत्या के लिए विवश होना पड़ता है, जो न केवल व्यक्तिगत त्रासदी है, बल्कि एक प्रकार का सामाजिक और पारिवारिक विघटन भी है।

'दीक्षांत' में सूर्यबाला जी ने शर्मा सर के माध्यम से भारतीय विद्यापीठों और कॉलेजों में व्याप्त गहरे भ्रष्टाचार को उजागर किया है। प्राध्यापकों के बीच आपसी ईर्ष्या और द्वेष, विद्यार्थियों की घातक राजनीति और अनुशासनहीनता का वातावरण शर्मा सर जैसे सिद्धांतों पर चलने वाले शिक्षक के लिए असहनीय हो जाता है। इस भ्रष्ट माहौल में, उनके जैसे शांत, संकोची, सात्विक और विनम्र व्यक्ति के लिए भौतिक

सफलता प्राप्त करना लगभग असंभव हो जाता है। सूर्यबाला जी स्वयं कहती हैं कि आज के अत्यधिक भ्रष्ट वातावरण में शर्मा सर जैसे लोगों की भौतिक उपलब्धि प्रायः शून्य होती है।

शिक्षा केंद्रों की यह दुर्दशा और पतन पहले कभी नहीं देखी गई थी। गुप्ता जैसे षड्यंत्रकारी सहयोगी और राजदान जैसे नीच एवं स्वार्थी प्रिंसिपल से छुटकारा पाना असंभव हो जाता है। यह नकारात्मक और भ्रष्ट वातावरण न केवल शैक्षणिक मूल्यों को नष्ट करता है, बल्कि शिक्षकों और छात्रों के बीच स्वस्थ संबंधों को भी विषैला बना देता है, जिससे एक प्रकार का भावनात्मक और सामाजिक विघटन होता है।

इसके अतिरिक्त, ट्यूशन विद्यालयों में भ्रष्टाचार का एक व्यापक माध्यम बन गया है। शिक्षक खुले तौर पर छात्रों से कहते हैं कि यदि उन्हें परीक्षा में उत्तीर्ण होना है तो उन्हें उनसे ट्यूशन लेनी होगी। इस अनैतिक प्रथा के माध्यम से अनेक शिक्षकों ने अकूत संपत्ति अर्जित की है। यह न केवल शिक्षा के उद्देश्य को भ्रष्ट करता है, बल्कि छात्रों और शिक्षकों के बीच अविश्वास और शोषण का माहौल भी पैदा करता है, जो एक स्वस्थ शैक्षणिक समुदाय के विघटन का कारण बनता है।

शर्मा सर की आत्महत्या इस व्यापक विघटन का एक दुखद परिणाम है। एक आदर्शवादी व्यक्ति का इस भ्रष्ट व्यवस्था के आगे घुटने टेक देना और आत्महत्या जैसा चरम कदम उठाना, न केवल एक व्यक्तिगत क्षति है, बल्कि यह समाज के मूल्यों और संस्थाओं के विघटन का भी प्रतीक है। उनका पारिवारिक जीवन कैसा था, इसका प्रत्यक्ष उल्लेख नहीं है, लेकिन एक संवेदनशील और आदर्शवादी व्यक्ति का इस प्रकार टूट जाना और अपने जीवन का अंत कर लेना, निश्चित रूप से उनके परिवार के लिए भी एक गहरा आघात और विघटनकारी अनुभव रहा होगा। इस प्रकार, 'दीक्षांत' में भ्रष्टाचार और आत्महत्या की समस्या के माध्यम से अप्रत्यक्ष रूप से पारिवारिक और सामाजिक विघटन की एक गहरी तस्वीर प्रस्तुत की गई है।

'दीक्षांत'

महानगरीय समस्या

'अग्निपंखी' उपन्यास महानगरीय जीवन की कुछ विशिष्ट समस्याओं को जयशंकर और उसकी माँ के अनुभवों के माध्यम से प्रस्तुत करता है। शिक्षित बेरोजगार युवक जयशंकर, बेहतर अवसरों की तलाश में अपने गाँव से मुंबई जैसे महानगर में आता है और वहाँ वॉचमैन (चौकीदार) का काम करता है। वह अपनी पत्नी और माँ के साथ एक छोटी सी झोपड़ी में रहता है, जो महानगरों में निम्न आय वर्ग के लोगों के आवास की दयनीय स्थिति को दर्शाता है।

जयशंकर की माँ, जो ग्रामीण जीवन के खुले और शांत वातावरण में पली-बढ़ी है, जब शहर आती है तो उसे यहाँ के जीवन के साथ तालमेल बिठाने में अत्यधिक कठिनाई होती है। उसे शहर का शोरगुल, भीड़भाड़ और सीमित स्थान रास नहीं आता। वह गाँव वापस जाना चाहती है और अपने बेटे से कहती है कि गाँव में उनकी खेती-बाड़ी है और वही उनका सच्चा ठिकाना है। वह शहरी जीवन की अनिश्चितता और शोषणकारी प्रकृति को महसूस करती है और कहती है, "गाँव घर देता है, सहर चूसता है।" यह कथन महानगरों में ग्रामीण पृष्ठभूमि से आने वाले लोगों की आवास, पर्यावरण और जीवनशैली से जुड़ी समस्याओं को उजागर करता है।

दूसरी ओर, गाँव में जयशंकर की विधवा माँ की अपनी समस्याएं हैं। वह गाँव में ही रहना चाहती है, अपनी जड़ों से जुड़े रहना चाहती है, लेकिन उसके रहने की कोठरी पर उसके जेठ और देवर कब्जा कर लेते हैं। परिवार के सदस्य छुटकी और बड़की दोनों उससे घर के कामों में लगातार व्यस्त रखते हैं। फिर भी, वह उस घर को अपना समझकर दिन-रात खटती रहती है। लेकिन एक दिन छुटकी उसे ताने मारती है और शहर की तथाकथित 'राजगद्दी' की बातें करती है, जो ग्रामीण और शहरी जीवन के बीच सामाजिक और आर्थिक असमानता को दर्शाता है। इसके बाद, देवर भी आकर उससे कठोर शब्दों में कहता है कि यहाँ शहर की 'बेशर्मी' नहीं चलेगी और यदि उसे शहरी तौर-तरीके पसंद हैं तो वह अपने बेटे के पास वापस चली जाए। वे स्पष्ट रूप से उससे अपना संबंध तोड़ लेते हैं और कहते हैं कि उनका उससे कोई लेना-देना नहीं है, सिवाय उसके बेटे के।

यह अंश महानगरीय जीवन की आकर्षण और कठिनाइयों के साथ-साथ ग्रामीण जीवन में व्याप्त पारिवारिक कलह और संवेदनहीनता को भी दर्शाता है। जहाँ एक ओर शहर रोजगार के अवसर प्रदान करता है, वहीं यह ग्रामीण परिवेश से आए लोगों के लिए आवास, जीवनशैली और सामाजिक अलगाव जैसी समस्याएं भी उत्पन्न करता है। दूसरी ओर, गाँव में भी पारिवारिक संबंध तनावपूर्ण और स्वार्थी हो सकते हैं, जिससे बुजुर्ग और कमजोर सदस्य उपेक्षित महसूस कर सकते हैं। 'अग्निपंखी' इन दोनों विपरीत परिस्थितियों और उनमें फंसे व्यक्तियों की मनोदशा का मार्मिक चित्रण करता है।

मलिन बस्तियों की समस्या

'अग्निपंखी' उपन्यास मुंबई की मलिन बस्तियों (झोपड़पट्टी) की भयावह और अमानवीय समस्याओं का एक जीवंत चित्र प्रस्तुत करता है। जयशंकर, रोजगार की तलाश में महानगर आता है और यहाँ एक झोपड़पट्टी में अपना ठिकाना बनाता है। वह अपनी बूढ़ी माँ को भी गाँव से अपने साथ ले जाता है, संभवतः इसलिए कि गाँव में उसे कोई सहारा नहीं मिलता या फिर बेटे के पास रहने की आस में वह शहर आती है।

लेखिका इस दृश्य का मार्मिक वर्णन करती हैं कि छह बाई छह फुट की एक छोटी सी झोंपड़ी में जवान बहू-बेटे के साथ एक बूढ़ी माँ कैसे अपना जीवन व्यतीत करेगी। सीमित स्थान की विवशता को दर्शाते हुए, जयशंकर कमरे में एक गहरे नीले रंग की साड़ी का पर्दा टांग देता है

और दूसरी तरफ माँ के लिए एक खटिया डाल देता है। इस व्यवस्था के माध्यम से लेखिका उस संकुचित और घुटन भरे माहौल को व्यक्त करती हैं जहाँ एक ही छोटे से स्थान में बेटा, बहू और माँ एक साथ रहने को मजबूर हैं और उसी में उनकी दुनिया के सारे कार्य संपादित होते हैं। लेखिका की टिप्पणी, "वहीं बेटा, वहीं बहू, वही माँ... उसी में दुनिया के सारे धंधे। सोचते भी पाप लगे," मलिन बस्तियों में गोपनीयता और व्यक्तिगत स्थान के पूर्ण अभाव की त्रासदी को उजागर करती है। यह स्थिति न केवल शारीरिक रूप से कष्टदायक है, बल्कि मानसिक और भावनात्मक रूप से भी असहनीय है।

माँ के लिए इस सीमित स्थान से भी बड़ी समस्या शौचालय की है। मलिन बस्तियों में अक्सर स्वच्छता और बुनियादी सुविधाओं का घोर अभाव होता है। लेखिका इस समस्या की गंभीरता को इन शब्दों में व्यक्त करती हैं, "लेकिन सबसे जानलेवा होता, दिशा मैदान की हाजत दबाए बैठे रहना।" यह पंक्ति मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों की अस्वच्छ और अस्वास्थ्यकर परिस्थितियों को दर्शाती है, जहाँ खुले में शौच करना या सीमित शौचालयों के लिए लंबी प्रतीक्षा करना उनकी दैनिक विवशता है।

अड़ोस-पड़ोस के सभी लोग उसी एक शौचालय के सामने लाइन लगाकर खड़े होते हैं और जल्दी-जल्दी निपटकर बाहर आ जाते हैं। यह दृश्य मलिन बस्तियों में जनसंख्या के घनत्व और संसाधनों की कमी को दर्शाता है, जहाँ बुनियादी मानवीय आवश्यकताओं को पूरा करना भी एक बड़ा संघर्ष है। 'अग्निपंखी' मलिन बस्तियों में रहने वाले लोगों के नारकीय जीवन, सीमित स्थान, गोपनीयता का अभाव और अस्वच्छता जैसी गंभीर समस्याओं को अत्यंत संवेदनशीलता के साथ चित्रित करता है, जिससे पाठकों को इन मानवीय त्रासदियों के प्रति जागरूक किया जा सके।

सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची (Reference)

[1]. डॉ. अरूण कुमार सिंह: समाज मनोविज्ञान की रूपरेखा प्रकाशन - मोतीलाल बनारसीदास दिल्ली।
[2]. डॉ. आर. एन. सिंहः आधुनिक सामाजिक मनोविज्ञान - अग्रवाल पब्लिकेशन्स आगरा।
[3]. डॉ. रणजीत सिंहः सामाजिक मनोविज्ञान।
[4]. भारतीय समाज - मुद्दे एवं समस्याएँ, डॉ. वी. एन. सिंह, डॉ. जनमेज सिंह, पृ.201
[5]. सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृष्ठ 78 वही, पृ.79 वही, पृ.81
[6]. सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पृ.13
[7]. सूर्यबाला के कथा-साहित्य में चित्रित सामाजिक समस्याएँ / 183
[8]. सूर्यबाला, सुबह के इंतजार तक, पृ.94
[9]. डॉ. रेवा कुलकर्णी, हिंदी के सामाजिक उपन्यासों मैं नारी, पृ.253
[10]. सूर्यबाला, मेरे संधिपत्र, पृ.91
[11]. सूर्यबाला, अग्निपंखी, पृ.81
[12]. डॉ. योगेश सूरी, यशपाल के उपन्यासों में नारी जीवन की समस्याएँ, पृ.29
[13]. डॉ. सरला दुआ, आधुनिक हिंदी साहित्य में नारी, पृ.178